Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
Vol. 13, Issue 1 | May 2025 - October 2025 | pp. 97-101

दलित चेतना का उद्भव एवं विकास : राजस्थान के विशेष सन्दर्भ में एक अध्ययन

शिव भगवान

शोधार्थी, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

डॉ. अर्चना तिवारी

सहायक आचार्य, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

भारत के सामाजिक इतिहास में जाति व्यवस्था ने शोषण एवं विषमता को जन्म दिया है। विशेषकर दलित समाज सदियों तक सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं आर्थिक शोषण का शिकार रहा। राजस्थान के सामंती वातावरण में जातीय पदानुक्रम गहराई से जड़ें जमाये हुए था, दलितों की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। पाबूजी, रामदेवजी, जांभोजी, मल्लीनाथजी, दादू दयालजी जैसे मध्यकालीन भक्त संतों एवं सुधारकों ने दलित चेतना को स्वर प्रदान किया। उन्होंने जाति व्यवस्था की विसंगतियों को उजागर कर मानव की समानता पर बल दिया। 19-20वीं सदी में जागरूकता, सामाजिक सुधार आंदोलन, ज्योतिबा फूले, गांधी और अम्बेडकर के विचारों से प्रभावित होकर राजस्थान के दलित समाज में शिक्षा और अधिकारों के लिए चेतना जागृत हुई। कई स्थानीय नेताओं ने दलितों को एकजुट कर सामाजिक भेदभाव के खिलाफ आवाज़ उठाई। स्वतंत्रता के पश्चात् संविधान में दलितों को अनुसूचित जाति के रूप में सूचीबद्ध किया गया है। उनके राजनैतिक, सामाजिक और शैक्षणिक उत्थान के लिए विशेष प्रावधान किये गये हैं। सत्तर के दशक के बाद सामाजिक अन्याय के खिलाफ जन आंदोलन तेज हुए। दलित समाज के लोग शिक्षा, नौकरी और भूमि अधिकारों की मांग को लेकर संगठित होने लगे। आज दलित आंदोलन केवल अधिकारों की मांग तक सीमित नहीं रहा बल्कि स्वाभिमान, आत्मनिरर्भरता और सामाजिक-राजनैतिक नेतृत्त्व की ओर बढ़ चुका है। इस शोध पत्र में राजस्थान में दलित चेतना के उद्भव, सामाजिक-सांस्कृतिक बदलावों, नेतृत्व एवं संगठनों की भूमिका तथा आंदोलन के स्वरूप में समय के साथ आये बदलावों का विश्लेषण किया गया है।

संकेताक्षर—*अस्पृश्यता, जातिप्रथा, दलित विमर्श, सामाजिक न्याय, छुआछूत, दलित चिंतन*

प्रस्तावना

दलित शब्द की उत्पत्ति संस्कृत धातु रूप 'दल' से हुई है। जिसका अर्थ है—तोड़ना, कुचलना।[1] मानक हिंदी कोश के अनुसार दलित शब्द का अर्थ है—जो दबाया गया हो।[2] भारत में दलित शब्द का अधिकारिक प्रयोग अंग्रेजों ने 1932 में डिप्रेस्ड क्लास (पद दलित वर्ग) के रूप में किया। दलित शब्द का प्रयोग दबाए गए, शोषित, पीड़ित, प्रताड़ित अर्थों में किया गया। 20वीं सदी के प्रारम्भ में डॉ. अम्बेडकर ने दलित शब्द को व्यापक आधार प्रदान किया। संविधान में दलितों के लिए अनुसूचित जाति शब्द का प्रयोग किया गया है जो कि समुदायों की एक व्यापक श्रेणी को शामिल करता है।

दलित आंदोलन का उद्भव सामाजिक अन्याय, जातिगत भेदभाव एवं उत्पीड़न के विरुद्ध दलित वर्ग की संघर्षशील चेतना से हुआ। आर्य समाज, रामकृष्णन मिशन, ज्येतिराव फूले, महात्मा गांधी और डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा, कार्यक्रमों और आजादी के बाद संविधान प्रदत्त अधिकारों ने इस आंदोलन को एक नई दिशा प्रदान की।

उद्देश्य

- राजस्थान में दलित आंदोलन के उदय एवं विकास के कारणों का विश्लेषण करना।
- दलित समाज के संगठन, नेतृत्व और उनकी भूमिका का आंकलन करना।

- राजस्थान में दलित आंदोलन के स्वरूप में समय के साथ आये सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों का अध्ययन एवं प्रभाव का आंकलन करना।

शोध विधि

राजस्थान में दलित आंदोलन से जुड़े तथ्यों एवं समस्याओं के अध्ययन हेतु ऐतिहासिक विधि का प्रयोग किया गया है। समकालीन संस्थाएँ, संगठन एवं साहित्य में अभिव्यक्त दृष्टिकोणों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। साथ ही दलित चिंतन की विभिन्न धाराओं व सामाजिक परिवर्तनों के संदर्भ में समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण भी अपनाया गया है।

दलितों की ऐतिहासिकता एवं दलित चेतना

दलित वर्ग की उत्पत्ति हिन्दू वर्ण व्यवस्था का एक दूषित परिणाम है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में कहा गया है कि "संसार की समृद्धि के लिए विराट पुरुष ने अपने मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य तथा पैरों से शूद्र उत्पन्न किये। अंगों से संबंधित यह विभाजन उस समय के सामाजिक स्तर को दर्शाता है। पुरुष सूक्त में समाज सौष्ठव के लिए चारों वर्णों को अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करना आवश्यक बताया गया। समाज का यही आदर्श भारत के परवर्ती विचारकों के समक्ष भी रहा।"[3]

प्राचीन काल में दलितों के ऊपर भारी निर्योग्यताएँ लादते हुए उन्हें सामाजिक व्यवस्था से बाहर कर दिया गया, फलस्वरूप वे अलग-थलग पड़ गये। उनके लिए सभी प्रकार के धार्मिक, आर्थिक एवं सामाजिक क्रियाकलाप प्रतिबंधित कर दिये गये।[4] प्राचीन काल में दलित वर्ग की चेतना के संबंध में महात्मा बुद्ध को प्रथम सामाजिक-धार्मिक सुधारों का प्रणेता कहा जा सकता है जिन्होंने हिन्दू जाति व्यवस्था को अस्वीकार कर, अस्पृश्यों को एक नये धर्म (बौद्ध धर्म) में प्रवेश करने का मार्ग प्रशस्त किया।[5] मध्यकाल में समाज में महत्वपूर्ण राजनैतिक एवं आर्थिक परिवर्तन हुए जिनसे जनमानस की सोच में बदलाव आया। भक्तिकाल में अनेक संतों को प्रादुर्भाव हुआ जिनमें से अधिकांश मध्यम, छोटी एवं निम्न जातियों के थे।

मध्ययुगीन संतों ने धार्मिक कट्टरता, शास्त्रबद्धता, पुरोहिताई, पाखण्ड एवं कर्मकांड पर गहरे प्रहार किए और समाज की जड़ मान्यताओं तथा उपासना पद्धति पर गंभीर प्रश्न चिह्न लगाये। यद्यपि उन्होंने समाज में मौलिक परिवर्तन पर जोर नहीं दिया तथापि समाज के उपेक्षित व पीड़ित लोगों को सम्मानपूर्ण जीवन का मार्ग दर्शाते हुए जाति व्यवस्था की विसंगतियों को उजागर किया और ब्राह्मणवाद को चुनौती दी। यदि और कुछ नहीं तो कम से कम धर्म के क्षेत्र में समानता की स्थापना तथा जाति की सीमाओं से परे व्यक्ति की महत्ता स्थापित करना भक्ति आंदोलन की कम महत्वपूर्ण उपलब्धि नहीं थी।[6]

आधुनिक युग में दलित चेतना का उदय 19वीं-20वीं सदी के सामाजिक धार्मिक सुधार आंदोलनों से माना जा सकता है। दलित सुधार के प्रारंभिक कार्य दक्षिण भारत में हुए। महत्मा ज्योतिराव फूले इस आंदोलन के प्रणेता थे। फूले के प्रयासों के पश्चात् राजा राम मोहन राय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, केशव चन्द्र सेन, दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद आदि के नेतृत्व में दलितोत्थान एवं कल्याण के कार्य चलाये गये। समाज सुधारकों द्वारा किये गये व्यक्तिगत प्रयासों के साथ-साथ अनेक संस्थाओं ने भी महत्वपूर्ण प्रयास किये। ज्योतिराव फूले द्वारा स्थापित सत्यशोधक समाज, गाँधी के हरिजन सेवक संघ, गोखले के भारत सेवक समाज, आत्मारंग पांडूरंग के प्रार्थना समाज, दयानंद सरस्वती के आर्य समाज, भारत दलित सेवक संघ आदि संस्थाओं की प्रमुख भूमिका रही।

राजस्थान में दलित चेतना का उद्भव

राजस्थान पुरातन व्यवस्था में जकड़ा हुआ एक सामंती राज्य था। यहाँ के सामंती वातावरण में जातीय भेदभाव, अत्याचार एवं अन्याय गहरे से जड़ें जमाये हुए था। राजस्थान पर तुर्कों एवं मुगलों के आक्रमणों से यहाँ के धार्मिक जीवन में नई परिस्थितियों का निर्माण हुआ और उस युग की आवश्यकताओं ने धर्म एवं समाज सुधार आंदोलनों को जन्म दिया।[7] रैदास, कबीर, नानक, रामानंद आदि के समकालीन एवं परवर्ती संतों ने उनकी शिक्षाओं से प्रेरणा लेकर उनका प्रसार राजस्थान में किया। पाबूजी, जांभोजी, संत पीपा, मल्लिनाथ एवं रामदेव जैसे भक्त संतों एवं सुधारकों के विचारों ने राजस्थान के जन सामान्य को प्रभावित किया। निर्गुण परम्परा के संत दादू दयाल ने समाज में व्याप्त वर्ग एवं जाति भेद का निर्भीकता से खंडन किया।

राजस्थान में इन संतों ने एक धार्मिक-सामाजिक क्रांति का सूत्रपात किया। इनके शिष्यों और अनुयायियों ने इनके विचारों एवं उपदेशों को दूर-दराज के क्षेत्रों तक पहुँचाया। एकेश्वरवादी भावना, सामाजिक समानता, जात-पात का खंडन से दलित

एवं पिछड़ी जातियों में एक नवीन चेतना का संचार हुआ। मध्यकालीन संतों ने अस्पृश्यता के विरुद्ध जो नव चेतना आरम्भ की उसने 19वीं-20वीं सदी में एक आंदोलन का रूप धारण कर लिया।[8] परिणामस्वरूप दलित वर्ग में कुछ संतों का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने दलित समाज को नई दिशा प्रदान करते हुए समाज सुधार के कार्य किए। दलित वर्गों के प्रमुख संतों में संत गरीबदास (अलवर), संत दुर्बलनाथ (बांदीकुई) संत देवगिरी (भरतपुर) संत रामप्रसाद (जयपुर) महर्षि नवल (जोधपुर), संत ब्रजलाल (नागौर), मलूकदास (गंगानगर), परमानंद भारती (टोंक), लालगिरी (बीकानेर), स्वामी गोकुलदास (अजमेर) संत लक्ष्मणदास (पाली) गोपालदास महाराज व मुरारीदास (मारवाड़) संत नामादास (जयपुर), संत बालीनाथ (दौसा), संत त्रिलोक दास (बीकानेर) स्वामी जोगाराम (जोधपुर) आदि प्रमुख हैं।[9]

1817-18 ई. में राजस्थानी राज्यों एवं ब्रिटिश सत्ता के बीच सम्पन्न हुई संधियों के फलस्वरूप यहाँ के राजनैतिक-सामाजिक वातावरण में महत्वपूर्ण बदलाव शुरू हुए। अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार तथा ब्रिटिश प्रशासकों के संपर्क में आने से लोगों में सुधारवादी दृष्टिकोण का विकास हुआ। अंग्रेजी संपर्क के परिणामस्वरूप भारतीयों की जीवन शैली में भी परिवर्तन आये। यातायात एवं संचार के साधनों के विकास के फलस्वरूप भी जातिवादी जकड़न धीरे-धीरे ढीली पड़ने लगी। नई आर्थिक व्यवस्था में जातिगत व्यवसाय के साथ-साथ अन्य पेशों को अपनाने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिला।[10] राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी एवं अम्बेडकर के प्रभाव स्वरूप दलितों में सामाजिक-राजनैतिक चेतना का प्रादुर्भाव हुआ जिसका प्रभाव राजस्थान पर भी पड़ा।

दलित चेतना के विकास में आर्य समाज, हरिजन सेवक संघ एवं अम्बेडकर की भूमिका

19वीं शताब्दी में देश के विभिन्न भागों में धर्म एवं समाज सुधार आंदोलन प्रारंभ हुए। इन सुधार आंदोलनों का राजस्थान पर भी प्रभाव पड़ा। इन आंदोलनों ने राजस्थान में अस्पृश्यता के निवारण एवं दलित चेतना के उत्थान में बहुमूल्य योगदान दिया।

आर्य समाज की स्थापना स्वामी दयानंद सरस्वती ने 10 अप्रैल 1875 को बम्बई में की। दयानंद सरस्वती ने ऊँच-नीच और छुआछूत का खुलकर विरोध किया। उन्होंने शुद्धि आंदोलन के माध्यम से अस्पृश्यों व अन्य हिन्दुओं के लिए जो पूर्व में मुसलमान या ईसाई बन गये थे, हिन्दू धर्म में लौटने का मार्ग प्रशस्त किया। वे जाति आधारित सामाजिक असमानता के विरोधी थे। आर्य समाज ने शूद्रों व दलितों को जनेऊ पहनने, मंत्रोच्चार करने तथा वेद पढ़ने की स्वतंत्रता प्रदान कर उन्हें सामाजिक हीनता से मुक्ति दिलाने का उल्लेखनीय कार्य किया। राजस्थान में अजमेर आर्य समाज का प्रमुख केन्द्र था। आगे चलकर प्रदेश के अन्य स्थानों पर भी आर्य समाज की शाखाएँ स्थापित की गई।[11] स्वामी दयानंद सरस्वती के राजस्थान भ्रमण से यहाँ के वातावरण में एक नई धार्मिक-सामाजिक चेतना का जन्म हुआ। आर्य समाज ने दलितोद्धार व अस्पृश्यता निवारण में विशेष रुचि से कार्य किये। दलित वर्ग में शिक्षा की चेतना जागृत करने के लिए वैदिक अछूत पाठशालाएँ एवं रात्रि पाठशालाएँ खोली।

महात्मा गाँधी अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म पर एक काला धब्बा मानते थे। गाँधी ने ही सर्वप्रथम हरिजन नाम दिया एवं 'हरिजन' नामक समाचार-पत्र का प्रकाशन आरंभ किया। सितम्बर 1932 में 'हरिजन सेवक संघ' की स्थापना की गई। हरिजन सेवक संघ का लक्ष्य सत्य व अहिंसा पर आधारित क्रांति के माध्यम से हरिजनों को शेष हिन्दुओं के साथ पूर्ण समानता प्रदान करना था।[12] अजमेर में 'राजपूताना हरिजन सेवक संघ' की स्थापना के बाद जयपुर, जोधपुर, अलवर, कोटा, उदयपुर, ब्यावर, भीलवाड़ा आदि स्थानों पर सामाजिक-राजनैतिक कार्यकर्ताओं एवं स्थानीय कांग्रेसी सदस्यों ने संघ की शाखाएँ स्थापित की। हरिजन सेवक संघ के क्रियाकलापों विशेषकर अस्पृश्यता उन्मूलन में लालकृष्णन गर्ग (अजमेर), चिरंजीलाल वर्मा (करौली), रामकरण जोशी (दौसा), रामवतार (अलवर) गोकुल वर्मा (भरतपुर), गौरीशंकर (जयपुर), मुक्ताप्रसाद (बीकानेर) आदि का योगदान उल्लेखनीय रहा।[13]

अम्बेडकर के विचारों एवं कार्यों ने राजस्थान के दलितों को भी गहराई से प्रभावित किया। उन्होंने सामाजिक, शैक्षणिक और राजनैतिक समानता की जो अलख जगाई, वह राजस्थान के दलित समाज के लिए प्रेरणा बन गई। दलितों में संगठित होने एवं अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने की चेतना बढ़ी। महात्मा गाँधी एवं अम्बेडकर के विचारों एवं कार्यों से प्रेरित होकर राजस्थान में जयपुर, अजमेर, जोधपुर जैसे क्षेत्रों में दलित समाज ने संगठित होकर जागृति एवं सुधार कार्य किये।

गाँधी के 'हरिजन सेवक संघ' की एक शाखा जयपुर में 1932 में स्थापित की गई जिसके प्रमुख नेता भूरामल पटेल, रामचंद्र, गंगादास, रामनाथ आर्य, मेवाराम, डालचंद आदि थे। ये दलित नेता अम्बेडकर के भाषण, लेखन से भी प्रभावित थे।

अजमेर में 1935 में दलित समस्याओं पर विचार-विमर्श हेतु एक सम्मेलन आयोजित किया गया। नाथू सिंह तँवर, माणिलाल, किशनलाल इसके प्रमुख नेता थे। सन् 1937 में अखिल भारतीय कोली राजपूत महासभा की स्थापना हुई जिसमें राजस्थान से भी लोग जुड़े। संगठन के माध्यम से अपने अधिकारों की मांग की। अजमेर से 'कोली राजपूत' नामक पत्रिका निकाली गई, जिसमें समाज के सामाजिक आर्थिक हालातों पर चर्चा की गई। अम्बेडकर के कार्यों, कार्यक्रमों, विचारों एवं आंदोलनों का प्रचार प्रसार किया गया। पश्चिमी राजपूताना में भी दलित चेतना के स्वर उठने लगे। औंकारमल जावा, एन.डी. गुजराती आदि अम्बेडकर के विचारों से प्रभावित होकर सामाजिक गतिविधियों में सक्रिय हुए। सन् 1946 में मारवाड़ में 'मारवाड़ मेहत्तर सुधार सभा' की स्थापना की गई जिसने स्थानीय स्तर पर महत्वपूर्ण कार्य किये।[14]

दलित जातीय संगठनों की भूमिका

राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान आर्य समाज, महात्मा गाँधी एवं अम्बेडकर के प्रभाव स्वरूप दलितों में सामाजिक-राजनैतिक चेतना का प्रादुर्भाव हुआ। देशभर में दलितों के द्वारा जातीय सुधार संगठनों की स्थापना की गई। राजस्थान में स्वतंत्रता पूर्व अखिल भारतीय बैरवा महासभा, राजस्थान प्रांतीय रैगर महासभा, राजस्थान मेघवंश सभा ने प्रयास किये।[15] इन जातीय संगठनों के समय-समय पर सम्मेलन आयोजित किये जाते थे। ये संगठन अपने सामान्य नागरिकों के अधिकारों जैसे मंदिर प्रवेश, सार्वजनिक कुएँ से पानी भरने, शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश और राजनैतिक प्रतिनिधित्व की माँग करने लगे। जातीय भेदभाव, अत्याचार व अन्याय के खिलाफ दलित वर्ग की आवाज बुलंद की। इन जातीय संगठनों ने एक तरह से दबाव समूह का भी कार्य किया। स्वतंत्रता पश्चात् सामाजिक-राजनैतिक क्षेत्र में इनकी भूमिका में बढ़ोतरी हुई है।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत के संविधान में दलितों के लिए 'अनुसूचित जाति' शब्द का प्रयोग किया गया। संविधान में अनुसूचित जातियों के शैक्षिक एवं आर्थिक उत्थान के लिए विशेष उपाय किये गये हैं। संविधान के अनुच्छेद 17 में अस्पृश्यता का निषेध किया गया है। अस्पृश्यता से उत्पन्न किसी भी अयोग्यता को लागू करना दंडनीय बनाया गया।[16] संविधान के अनुच्छेद 15 में धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी एक के आधार पर भेदभाव का निषेध किया गया है। अनुसूचित जातियों के लोगों को सरकारी नौकरियों में आरक्षण देकर इनकी आर्थिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया है। संविधान के अनुच्छेद 330 एवं 332 के तहत लोकसभा एवं राज्य विधानसभाओं में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित किये गये हैं।

स्वतंत्रता के बाद शिक्षा, रोजगार एवं राजनीति में मिले आरक्षण के परिणामस्वरूप दलित समाज में एक नया आत्म विश्वास पैदा हुआ है। दलित युवाओं एवं संगठनों ने शिक्षा के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। सामाजिक आंदोलनों के ज़रिये भूमि अधिकारों एवं समानता की बात की है। हाल ही के दशकों में दलितों का राजनैतिक सशक्तिकरण भी हुआ है। राजनैतिक दलों ने दलितों को राजनैतिक मंच प्रदान किया है जिससे दलित राजनीति को एक नई दिशा मिली हैं।

चुनौतियाँ एवं उपलब्धियाँ

आजादी के 75 वर्षों के बाद आज भी सामाजिक जातीय भेदभाव एवं दलित उत्पीड़न की घटनाएँ होती रहती हैं। कई बार राजनीति में दलित नेतृत्व का इस्तेमाल केवल वोट बैंक की राजनीति के लिए किया गया है। दलित समुदाय के भीतर विषमता व वर्ग संघर्ष भी एक बाधा है। दलित महिलाओं का सशक्तिकरण भी एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। दलित महिलाओं के साथ हिंसक घटनाएँ होती रहती हैं, उन्हें लम्बे समय तक नजरंदाज किया गया हालांकि अब वे शिक्षा, नेतृत्व और सामाजिक मुद्दों में आगे आ रही हैं।

दलित चेतना ने इस समुदाय को एक नई दिशा प्रदान की है। आरक्षण के कारण शिक्षा एवं नौकरियों में हिस्सेदारी बढ़ी है। पंचायतों, शहरी निकायों, विधानसभा व संसद में राजनैतिक प्रतिनिधित्व बढ़ा है। सामाजिक जागरूकता और आत्मसम्मान में वृद्धि हुई है। विभिन्न क्षेत्रों में दलित नेतृत्व तेजी से मजबूत उपस्थिति बना रहा है।

निष्कर्ष

राजस्थान में दलित आंदोलन का एक लम्बा और संघर्षपूर्ण इतिहास रहा है जो सामाजिक अन्याय, जातिगत भेदभाव और दमन के खिलाफ उठ खड़ा हुआ। मध्यकालीन संतों एवं सुधारकों ने जाति प्रथा जनित भेदभाव एवं अन्याय के खिलाफ आवाज़ बुलंद की। आधुनिक काल में महात्मा गाँधी, अम्बेडकर और ज्योतिका फूले जैसे नेताओं के द्वारा दलितोद्धार के लिए किए गये कार्यों और प्रयासों का राजस्थान में भी प्रभाव पड़ा। राजस्थान के स्थानीय दलित नेतृत्व एवं संगठनों ने इस दिशा महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्वतंत्रता पश्चात् संवैधानिक प्रावधानों ने इस समुदाय के राजनैतिक, सामाजिक, शैक्षणिक एवं आर्थिक उत्थान के नये आयाम प्रदान किये हैं। वर्तमान में भी दलितोद्धार के कार्य जारी है और इसकी दिशा अब सामाजिक समानता, शिक्षा, राजनीतिक भागीदारी और आत्म सम्मान की ओर है।

सन्दर्भ सूची

1. नईम, इन्तजार, दलित समस्या में जड़ कौन, साहित्य सौरभ, नई दिल्ली, 1998, पृ.सं. 75
2. कौशिक, आदित्येश्वर, संस्कृत-हिन्दी कोश, दिनमान प्रकाशन, दिल्ली, 1986, पृ.सं. 162
3. शर्मा, रामशरण, शूद्रों का प्राचीन इतिहास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 2017, पृ.सं. 22
4. पूरणमल, अस्पृश्यता एवं दलित चेतना, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 1999, पृ.सं. 5
5. उपर्युक्त, पृ.सं. 43
6. सिंह, रामगोपाल, सामाजिक न्याय एवं दलित संघर्ष, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2010, पृ.सं. 54-58
7. व्यास, प्रकाश, राजस्थान का सामाजिक इतिहास, पंचशील प्रकाशन, जयपुर 2001, पृ. 243
8. उपर्युक्त, पृ.सं. 192
9. चैड़वाल, शिवकरण, दलित चेतना का उदय एवं विकास, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2016, पृ.सं. 67
10. व्यास, पूर्वोक्त, पृ.सं. 251-52
11. सिंह, रामगोपाल, पूर्वोक्त, पृ.सं. 19-20
12. उपर्युक्त, पृ.सं. 25-26
13. चौधरी, रामनारायण, 20वीं सदी का राजस्थान, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर, 1980, पृ.सं. 155-158
14. श्यामलाल, अम्बेडकर एवं दलित आंदोलन, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2015, पृ.सं. 66-96
15. पूरणमल, पूर्वोक्त, पृ.सं. 164
16. बसु, दुर्गादास, भारत का संविधान-एक परिचय, वाधवा एण्ड कम्पनी, नागपुर, 2003, पृ.सं. 96-97